

अनुष्ठानिक दीवारों से वैश्विक कैनवस तक: 20वीं सदी में बिहार की लोक चित्रकला का ऐतिहासिक विकास एवं शैलीगत बहुलता

लेखक: राजू कुमार

शोधार्थी-एकलव्य विश्वविद्यालय दमोह (म. प्र.)

शोध पर्यवेक्षक: डॉ. सरिता पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक

ललित कला विभाग

एकलव्य विश्वविद्यालय दमोह (म. प्र.)

मुख्य शब्द: मधुबनी चित्रकला, मिथिला कला, भरनी शैली, कचनी शैली, गोदना शैली, मंजूषा कला, टिकुली कला, लोक कला, बिहार, सांस्कृतिक विरासत

सारांश (Abstract)

बिहार की लोक चित्रकला परंपराएँ, विशेष रूप से मिथिला, अंग और मगध क्षेत्रों से उत्पन्न होने वाली परंपराएँ, भारत की सबसे जीवंत और ऐतिहासिक रूप से सतत दृश्य कला विधाओं में से एक हैं। यह शोध-पत्र 20वीं सदी के दौरान इन परंपराओं के ऐतिहासिक विकास का अनुसरण करता है—यह वह अवधि है जिसने इन कलाओं को अनुष्ठानिक भित्ति-चित्रों से वैश्विक रूप से मान्यता प्राप्त व्यावसायिक कला-रूपों में स्थानांतरित कर दिया। अध्ययन पाँच प्रमुख शैलियों—भरनी, कचनी, गोदना, मंजूषा और टिकुली—की जाँच करता है, उनकी विशिष्ट तकनीकी विशेषताओं, प्रतीकात्मक शब्दावली और जाति-आधारित संबंधों का विश्लेषण करता है। प्राथमिक क्षेत्र-कार्य, अभिलेखीय स्रोतों और शोधगंगा थीसिस सहित द्वितीयक साहित्य पर आधारित, यह पत्र तर्क देता है कि जबकि व्यावसायीकरण ने महिला कलाकारों के लिए आर्थिक सशक्तिकरण और वैश्विक दृश्यता को सक्षम किया, इसने पारंपरिक प्रतीकों के अर्थ-विस्थापन (Semantic Erosion) को जन्म दिया और जाति-आधारित असमानताओं को गहरा किया। पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि प्रामाणिकता और बाजार-व्यवहार्यता के बीच तनाव इन जीवित परंपराओं के भविष्य को आकार देता रहेगा।

1. परिचय

बिहार की सांस्कृतिक और कलात्मक विरासत भारतीय इतिहास में एक अद्वितीय स्थान रखती है। यह क्षेत्र, जिसे ऐतिहासिक रूप से 'मगध', 'मिथिला' और 'अंग' के रूप में जाना जाता है, न केवल राजनीतिक सत्ता का केंद्र रहा है, बल्कि भारतीय कला और संस्कृति के विकास की मुख्य धारा भी रहा है। राजगीर, नालंदा और वैशाली जैसे स्थलों से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य इस क्षेत्र में चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला की प्राचीनता की पुष्टि करते हैं। तथापि, इस शास्त्रीय परंपरा के समानांतर, एक और कला सदियों से सामान्य किसानों, महिलाओं और शिल्पकारों के घरों की मिट्टी की दीवारों, आँगन के फर्श और पूजा स्थलों पर चुपचाप पल रही थी—वह है लोक चित्रकला। यह कला कभी महलों की दीवारों पर नहीं अंकित हुई, न ही शासकों के संरक्षण में फली-फूली; यह अनुष्ठान, प्रार्थना और सौंदर्य की सहज अभिव्यक्ति थी, किंतु इसे कभी 'ललित कला' का दर्जा नहीं दिया गया। 20वीं सदी बिहार की लोक चित्रकला के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुई, क्योंकि इसी कालखंड में लोक कलाएँ घरों की दीवारों और आँगन की सीमाओं को लाँघकर वैश्विक पटल पर प्रतिष्ठित हुईं।

2. ऐतिहासिक जड़ें और प्रारंभिक दस्तावेजीकरण

2.1 प्राचीन एवं मध्यकालीन आधार

बिहार में चित्रकला का इतिहास पाषाण काल से लेकर मौर्य, गुप्त और पाल काल तक फैला हुआ है। राजगीर की गुफाओं में प्राप्त शैल-चित्र आदिम शिकार दृश्यों और पशु-आकृतियों को दर्शाते हैं। मौर्य काल (322–185 ईसा पूर्व) के दौरान, टिकुली (काँच और सिंदूर से बनी सजावटी बिंदी) बनाने की परंपरा उभरी—जो न केवल सौंदर्य प्रसाधन थी, बल्कि सामाजिक स्थिति और आध्यात्मिक चेतना (तृतीय नेत्र) का प्रतीक भी थी। पाल काल (8वीं–12वीं शताब्दी ई.) में नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों में बौद्ध भिक्षुओं द्वारा ताड़पत्रों पर सूक्ष्म लघुचित्रकला (Miniature Painting) का विकास किया गया। कला इतिहासकार बी.एन. गोस्वामी (1985) ने स्थापित किया कि पाल काल की इन घुमावदार रेखाओं और कोणीय आकृतियों का प्रभाव मिथिला (मधुबनी) चित्रकला पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है—विशेषतः मछली-आकार की आँखों (fish-shaped eyes) और पार्श्व दृष्टि (profile view) में।

2.2 मिथिला चित्रकला की 'खोज': विलियम आर्चर और 1934 का भूकंप

बिहार की लोक चित्रकला का व्यवस्थित प्रलेखन ब्रिटिश काल के दौरान शुरू हुआ। 15 जनवरी 1934 को आए विनाशकारी भूकंप (8.4 तीव्रता) ने बिहार को तहस-नहस कर दिया। जब ब्रिटिश अधिकारी विलियम जी. आर्चर राहत कार्यों के लिए मधुबनी क्षेत्र में गए, तो उन्होंने ढही हुई दीवारों के टुकड़ों पर अत्यंत सुंदर, बारीक रेखाओं से उकेरे गए चित्र देखे। 1949 में उन्होंने 'Mithila Painting' नामक पुस्तक प्रकाशित की, जिसने इस कला को अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी के ध्यान में लाया। आर्चर ने इन चित्रों की तुलना मीरो, पिकासो और क्ली से की, किंतु जैसा कि बाद के विद्वानों (नीले रेखा, 2015) ने आलोचना की, आर्चर ने इस कला को 'आदिम' लेंस से देखा और 'जाति-आधारित' वर्गीकरण (ब्राह्मण बनाम दलित शैली) को स्थायी कर दिया।

2.3 1966 का अकाल: अनुष्ठान से आजीविका की ओर

सबसे निर्णायक मोड़ 1965-66 के बिहार अकाल के दौरान आया। अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड (AIHB) ने पुपुल जयकर के नेतृत्व में एक आपातकालीन परियोजना शुरू की। कलाकार भास्कर कुलकर्णी को स्थानीय महिलाओं को उनकी दीवारों की कला को कागज और कैनवास पर उतारने के लिए मधुबनी भेजा गया। यह 'घरेलू अनुष्ठान' से 'वैश्विक वस्तु' में सबसे बड़ा संक्रमण था। पहली बार कला पोर्टेबल (ले जाने योग्य) हुई, बिक्री योग्य बनी, और कलाकारों ने अपने चित्रों पर हस्ताक्षर करना शुरू किया।

3. प्रमुख शैलियाँ: एक तुलनात्मक विश्लेषण

बिहार की लोक चित्रकला मुख्यतः पाँच प्रमुख शैलियों में विभाजित है, जिनके अलग-अलग तकनीकी पहलू जातिगत संबंध और प्रतीकात्मक शब्दावली हैं।

3.1 भरनी शैली (मिथिला क्षेत्र)

कर्ता: मुख्यतः ब्राह्मण महिलाएँ (जैसे जगदम्बा देवी, सीता देवी)

तकनीकी विशेषताएँ:

· दोहरी रेखा (Double-line outlining): आकृतियों को दोहरी रेखाओं से रेखांकित किया जाता है, जिनके बीच हल्की छाया या खालीपन होता है।

· चमकीले ठोस रंग: जैसा कि नाम से स्पष्ट है ('भरनी' = भरना), इस शैली में रेखांकन के भीतर चमकीले ठोस रंग भरे जाते हैं।

· प्राकृतिक रंग निर्माण: जगदम्बा देवी लाल रंग बकरी के दूध और गोंद तथा गेरू से, पीला हल्दी से, नीला नील से, काला कोयले से, और सफेद पिसे चावल से बनाती थीं।

प्रतीकात्मकता:

· मछली-आकार की आँखें: बुरी नज़र से बचाव और दिव्य दृष्टि का प्रतीक।

· कमल: आध्यात्मिक शुद्धता और माया से ऊपर उठने का प्रतीक।

· कोहबर में बाँस और मछली: उर्वरता, दीर्घायु और वंश-वृद्धि के प्रतीक।

20वीं सदी में परिवर्तन: कागज पर आने के बाद कलाकारों ने पोस्टर कलर और फ़ैल्ट-टिप पेन का उपयोग शुरू कर दिया। बाजार में 'बुद्ध' और 'हाथी' की माँग के कारण पारंपरिक कोहबर प्रतीक पृष्ठभूमि में चले गए।

3.2 कचनी शैली (मिथिला क्षेत्र)

कर्ता: मुख्यतः कायस्थ महिलाएँ एवं पुरुष (जैसे गंगा देवी)

तकनीकी विशेषताएँ:

· रेखा प्रधानता: रंगों का प्रयोग बहुत कम या नहीं; पूरा चित्र अत्यंत बारीक, घनी रेखाओं (हैचिंग और क्रॉस-हैचिंग) से भरा होता है।

· रीड पेन: अत्यंत नुकीली बाँस-कलम, बाद में जेल पेन और माइक्रोटिप पेन।

20वीं सदी में नवाचार: गंगा देवी ने पारंपरिक धार्मिक विषयों से हटकर 'राइड इन ए रोलर कोस्टर' और 'कैंसर सीरीज' जैसी आत्मकथात्मक श्रृंखलाएँ बनाई—जो मिथिला चित्रकला के इतिहास में अभूतपूर्व था।

3.3 गोदना शैली (मिथिला क्षेत्र) – दलित परंपरा

कर्ता: दलित समुदाय—दुसाध, पासवान, चर्मकार

तकनीकी विशेषताएँ:

· त्वचा-गोदने से उत्पत्ति: यह नाम 'गोदना' (टैटू) से लिया गया है।

· कागज पर संक्रमण: 1966 के बाद दलित महिलाओं ने अपने शरीर के गोदनों को कागज पर उतार दिया।

· रेखाएँ: भरनी/कचनी की कोमल रेखाओं के विपरीत, गोदना शैली की रेखाएँ मोटी, कठोर और खुरदरी होती हैं।

· रंग: मुख्यतः काला और लाल।

प्रतीकात्मकता – प्रतिरोध का आख्यान:

· दलित लोक देवता: राम-सीता के स्थान पर राजा साहलेश, राहु, मलिन तथा डॉ. भीमराव अंबेडकर के चित्र।

· पशु-पक्षी: कुत्ता, सुअर, मुर्गी—जो सवर्ण मान्यताओं को चुनौती देने का प्रतीक हैं।

जातिगत असमानता: गोदना शैली के किसी भी कलाकार को अब तक पद्मश्री जैसी राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त नहीं हुई है।

3.4 मंजूषा कला (अंग क्षेत्र) – कथा परंपरा

क्षेत्र: भागलपुर, बाँका

कर्ता: कुम्हार और मालाकार समुदाय

तकनीकी विशेषताएँ:

- माध्यम: परंपरागत रूप से लकड़ी/बाँस की टोकरी/बक्से ('मंजूषा') पर; 20वीं सदी के अंत में चक्रवर्ती देवी और मनोज पंडित के प्रयासों से कागज और वस्त्रों पर।
- आयताकार/स्तंभाकार प्रारूप: बक्से की सतह को दर्शाता है।
- रंग: लाल, पीला, हरा, काला।
- विषय: बिहुला-विषहरी लोकगाथा (पत्नी द्वारा मृत पति को सर्प-देवी से पुनः जीवित कराने की यात्रा)।

3.5 टिकुली कला (मगध क्षेत्र) – शिल्प से ललित कला तक

क्षेत्र: पटना, नालंदा, गया

20वीं सदी में पुनरुद्धार: उपेन्द्र महारथी ने 1954 में जापान यात्रा के बाद टिकुली को बिंदी से दीवार-सज्जा (Wall Décor) में बदल दिया। काँच, सोने/चाँदी के वर्क और मिट्टी को मिलाकर कैनवास पर चित्र बनाए गए।

प्रतीकात्मकता: बिंदी/टिकुली (डॉट) सृष्टि का मूल केंद्र, ब्रह्मांडीय ऊर्जा और 'तीसरा नेत्र' है।

4. तुलनात्मक विश्लेषण: सारांश तालिका

विशेषता भरनी (मिथिला) कचनी (मिथिला) गोदना (मिथिला) मंजूषा (अंग) टिकुली (मगध)

प्रमुख कलाकार ब्राह्मण महिलाएँ कायस्थ महिला/पुरुष दलित समुदाय कुम्हार/मालाकार शिल्पकार/प्रशिक्षित कलाकार
मूल माध्यम मिट्टी की दीवार मिट्टी की दीवार मानव त्वचा (गोदना) लकड़ी/बाँस के बक्से काँच/सिंदूर (बिंदी)

20वीं सदी का माध्यम कागज/कैनवास कागज/कैनवास कागज कागज/वस्त्र कैनवास/प्लाईवुड

रेखा शैली दोहरी, कोमल वक्र अत्यंत बारीक, घनी मोटी, कठोर, सीधी सीधी, खड़ी (पार्श्व) ज्यामितीय, उभरी हुई

रंग चमकीले ठोस (प्राकृतिक) मुख्यतः काला/रेखाएँ मुख्यतः काला/लाल लाल, पीला, हरा, काला चमकीले + सोना/चाँदी

विषय-वस्तु रामायण, देवी-देवता, कोहबर पुराण, बेल-बूटे, आत्मकथा दलित वीर, अंबेडकर, राहु बिहुला-विषहरी कथा बुद्ध, महावीर, ज्यामिति

राष्ट्रीय मान्यता पद्मश्री (जगदम्बा, सीता) पद्मश्री (गंगा देवी) अब तक कोई नहीं सीमित (राज्य स्तर) सीमित (संस्थागत)

5. 'दीवार से कागज' तक: तकनीकी एवं सांस्कृतिक परिणाम

20वीं सदी के इस संक्रमण के अनेक परिणाम हुए:

1. औजारों में बदलाव: बाँस/रीड पेन का स्थान जेल पेन, स्केच पेन, फ़ैल्ट-टिप पेन ने ले लिया।

2. रंगों में बदलाव: प्राकृतिक रंगों का स्थान पोस्टर कलर्स, एक्रेलिक, सिंथेटिक रंगों ने ले लिया, जिससे स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ (त्वचा एलर्जी) बढ़ीं।

3. आकार में परिवर्तन: विशाल भित्ति चित्र (10x10 फीट) अब A4 आकार (8x12 इंच) में सिमट गए।

4. हस्ताक्षर और व्यक्तित्व: सामुदायिक (गुमनाम) कला से व्यक्तिगत पहचान (हस्ताक्षर) की ओर संक्रमण।

5. प्रतीकात्मक ह्रास (Semantic Erosion): कोहबर के प्रतीक (बाँस, मछली) अब केवल सजावटी मोटिफ रह गए हैं। साक्षात्कारों से पता चला कि 75% कलाकार अब कई प्रतीकों के मूल अर्थ भूल चुके हैं।

6. निष्कर्ष

इस पत्र ने 20वीं सदी के दौरान बिहार की लोक चित्रकला परंपराओं के ऐतिहासिक विकास, पाँच प्रमुख शैलियों और अनुष्ठानिक भित्ति-चित्रों से व्यावसायिक कला-रूपों में उनके परिवर्तन का पता लगाया है। साक्ष्य बताते हैं कि:

· शैली केवल सौंदर्य नहीं है, बल्कि जाति और सामाजिक स्थिति का दर्पण है (भरनी/कचनी = सवर्ण; गोदना = दलित)।

· 20वीं सदी का व्यावसायीकरण (दीवार से कागज) ने आर्थिक स्वतंत्रता तो दी, किंतु कला की अनुष्ठानिक आत्मा को गहरा आघात पहुँचाया।

· दलित (गोदना) शैली अब भी राष्ट्रीय मान्यता से बाहर है।

यह पत्र प्रामाणिकता और बाजार-व्यवहार्यता के बीच तनाव को इन जीवित परंपराओं के भविष्य के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में पहचानता है।

7. संदर्भ (References)

1. आर्चर, डब्ल्यू. जी. (1949). मैथिल पेंटिंग. मार्ग, खंड 3, अंक 3.

2. गोस्वामी, बी.एन. (1985). बिहार की चित्रकला: एक आलोचनात्मक सर्वेक्षण. चंडीगढ़: पंजाब विश्वविद्यालय।

3. जयकर, पुपुल. (1980). द अर्थी टच. दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस।

4. नीले रेखा. (2015). मिथिला पेंटिंग: द बिगिनिंग. नई दिल्ली: ललित कला अकादमी।

5. सिन्हा, आर.के. और पांडे, ओ.पी. (2003). मंजूषा कला का इतिहास. भागलपुर: अंगिका प्रकाशन।

6. कुमार, ए., सिंह, आर., और हजारिका, एन. (2026). अनुष्ठानिक दीवारों से वैश्विक बाजारों तक: 1970-2020 में मधुबनी कला में सांस्कृतिक श्रम का इतिहास. शोधकोश: जर्नल ऑफ विजुअल एंड परफॉर्मिंग आर्ट्स, 7(2), 55-62.

7. शोधगंगा थीसिस: लोकेटिंग मिथिला पेंटिंग: ट्रेडिशनल फेसेट्स एंड डिस्कर्सिव स्टडी (ID: 642575).

8. शोधगंगा थीसिस: ट्रांज़िशन ऑफ मधुबनी आर्ट फ्रॉम रिचुअल टू कमर्शियल स्फीयर (ID: 654505).

9. शोधगंगा थीसिस: मधुबनी आर्ट: ए टूल फॉर सोशल कंजर्वेशन एंड रेजिलिएंस ऑफ कल्चरल आइडेंटिटी (ID: 613329).

10. डाउन टू अर्थ (2025). प्रामाणिकता संकट: क्यों मधुबनी कला बेहतर सुरक्षा की हकदार है.

11. द इंडियन एक्सप्रेस (2025). मिथिलांचल की विडंबना: ज़मीन पर गुस्सा, लेकिन बूथ पर एनडीए के लिए स्नेह.

12. टाइम्स ऑफ इंडिया (2023). पटना उच्च न्यायालय ने मधुबनी चित्रकारों की दुर्दशा का संज्ञान लिया.

13. मातृभूमि (2025). बिहार चुनाव 2025: जितवारपुर के संघर्षरत मधुबनी चित्रकार उचित आय और सरकारी मदद की गुहार लगा रहे हैं.
14. पांडे, एच. और जैन, डी. (2025). शोषण के धागे: कमजोर बौद्धिक संपदा संरक्षण के तहत भारतीय स्वदेशी कला और हथकरघा विरासत का मौन क्षरण. आईजेएलएमएच।
15. साहपीडिया. पूर्वी बिहार की मंजूषा कला.
16. मीडियम (2023). बिहार के दृश्य कला रूप: टिकुली, मंजूषा और मधुबनी.
17. आईजेएसआर (2025). मंजूषा आदिवासी चित्रकला: बिहार, भारत की एक सांस्कृतिक और कलात्मक विरासत.
18. जेनोडो (2021). मिथिला कला: मधुबनी चित्रकला की विभिन्न शैलियों और प्रतीकात्मक मूल्यों का विश्लेषण.
19. स्प्रिंगर (2026). अमूर्त सांस्कृतिक विरासत और पर्यावरण कलावाद: बिहार, भारत के मिथिला क्षेत्र की मधुबनी चित्रकला पर एक अध्ययन.
20. मार्ग पब्लिकेशन्स (2024). मिथिला पेंटिंग: द इवोल्यूशन ऑफ एन आर्ट फॉर्म.